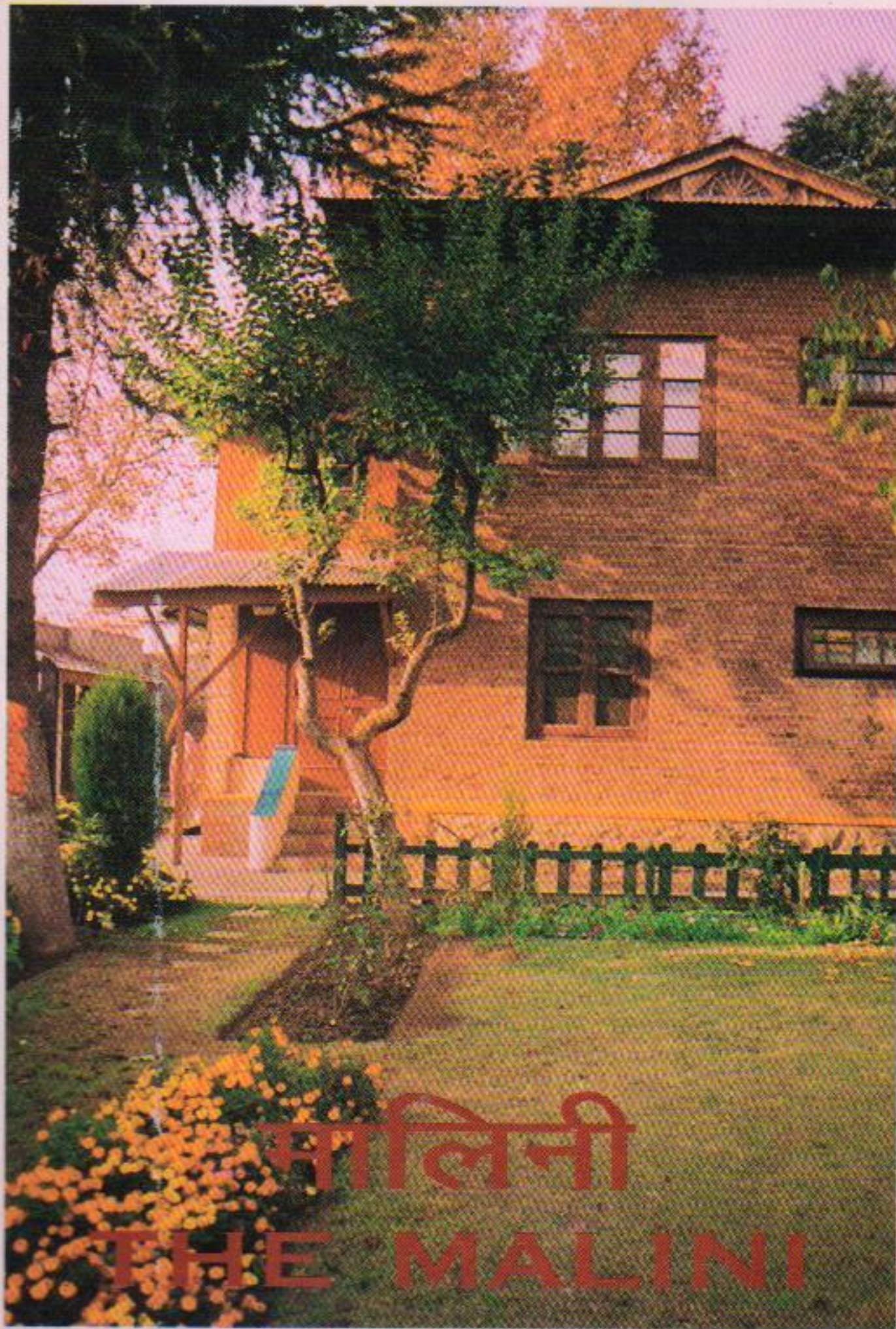


JANUARY, 2001



ISHWAR ASHRAM TRUST

ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR



मालिनी THE MALINI

Abhinavagupta about Mālinī

यन्मयतयेदमखिलं, परमोपादेयभावमभ्येति।
भवभेदास्त्रं शास्त्रं, जयति श्रीमालिनी देवी॥

*Śrī Mālinī Devī is ever victorious. In union
with her all the treatises of non-dualistic
order achieve the nature of divine potency.*

T.A.A. XXXVII

ISHWAR ASHRAM TRUST

ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

Board of Trustees :

Sri Inderkrishan Raina

(Secretary/Trustee)

Sri Samvit Prakash Dhar

Sri Brijnath Kaul

Sri Mohankrishan Wattal

Editorial Board :

Sushri Prabhadevi

Prof. Nilakanth Gurtoo

Prof. Makhanlal Kukiloo

Sri Somnath Saproo

Sri Brijmohan

(I.A.S. Retd.) Co-ordination

Publishers :

Ishwar Ashram Trust

Ishber (Nishat), Srinagar

Kashmir.

Administrative Office :

Ishwar Ashram Bhawan

2-Mohinder Nagar

Canal Road

Jammu Tawi - 180 002.

Tel. : 553179, 555755

Branch Office :

R-5, Pocket D, Sarita Vihar, New Delhi - 110 044

Tel. : 6943307, 6958038

Telefax : 6955611

January, 2001

Price : Rs. 20.00

© Ishwar Ashram Trust

Produced on behalf of Ishwar Ashram Trust

by Paramount Printographics, Daryaganj, New Delhi-2. Tel 328-1568, 327-1568

ॐ नमः परमसंविद् चिद्वपुषे

विषय सूची : Contents

सम्पादक की लेखनी से		4
1. Śiva Sūtras	Svāmī Lakṣmaṇa Joo	
	Mahārāja	7
2. Monistic Śaivite Philosophy of Kashmir	Dr. B.N. Pandit	14
3. Hymn to Universal Mother	Shri S.P. Dhar	18
4. Concept of Fullness- Pūrṇatā in Kashmir Śaivism	Prof. M.L. Kukiloo	19
5. विज्ञानभैरव	स्वामी लक्ष्मणजू महाराज	24
6. कौन है	सुश्री शारिका देवी	29
7. जयाद्यारुद्राः	आचार्य जयरथ	32
8. शैवदर्शन के वातायन से	प्रो० नीलकंठ गुर्तू	36
9. पुष्पाञ्जलिः	सुश्री जया कौल	38
10. अभिनन्दन	सुश्री शीला मुन्शी	39
11. श्री गुरुदेवाय नमः	डा० जवाहर लाल पण्डित	40

संपादक की लेखनी से



नव सहस्राब्दि के प्रथम वर्ष में

मालिनी का यह अंक पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हुए हमें अपार प्रसन्नता हो रही है। यह नव वर्ष सारे गुरुपरिवार के सदस्यों तथा गुरुभक्तों को चैतन्य प्रकाश की अखण्ड ज्योति से जगमगा उठाने में सफल हो, ऐसी सद्गुरु महाराज से हमारी विनम्र प्रार्थना है। सूर्यमण्डल जैसे अपने ही प्रकाश से स्वयं प्रकाशित होता हुआ सारे संसार को प्रकाशित करता है उसी प्रकार श्री सद्गुरु देव का परमभास्करस्वरूप भी स्वयं अपने प्रकाश से प्रकाशित होता हुआ सारे संसार के प्राणियों को न केवल प्रकाश ही प्रदान करता है अपितु आध्यात्मिक शान्ति से भी लाभान्वित करता है। एक बात ध्यान देने योग्य है कि सूर्य का प्रकाश केवल बाहिर का ही अन्धकार दूर करने में समर्थ होता है। यदि हजार सूर्यों का भी एक साथ उदय हो जाये तब भी आभ्यन्तर अन्धकार को दूर भगाने में उनमें शक्ति नहीं होगी। यह तो सद्गुरु महाराज के श्रीचरणों की ज्योति का एक कण मात्र है जो जन्म-जन्मान्तरों के शंकातककलंककालुष्य का निराकरण करने में सक्षम होता है और वास्तविकशान्ति से आनन्द-विभोर कर देता है। कहा भी है—

अस्त्यस्मिन् महसां महानिधिरसौ देवो विवस्वान् महान्

यस्मिन् जाग्रति जाग्रतीव रजनीसुप्ता इमे जन्मिनः।

किन्त्वेका महती ततो विजयते श्री दैशिकांग्रिद्युतिः

यद्भासाच्छुरितं चिरन्तनतमो हित्वैव जाग्रति सत्॥

(पद्यान्तर)

है इस जग में प्रकाश जलनिधि, उग्र तेजधर मित्र महान्

उदित हुआ जब, जागा सारा, भ्रान्त निशान्ध में जग नादान।

उससे बढ़-चढ़ ज्योति स्वरूपा गुरु चरणों की विभा की शान

जिससे परितः लिप्त हुआ जन्मों का गाढ़-गाढ़ अज्ञान

सारा मिटकर रहता तत्क्षण लाता जागृति ज्ञान समान॥

इससे स्पष्ट हुआ कि सद्गुरुदेव का यही दिव्यस्वरूप भ्रष्ट पथिकों को माया के अन्धकार में भटक जाने पर भी अपूर्व ज्ञान-ज्योति से मार्ग-प्रदर्शन करता है। जिस प्रकार दुग्ध दुग्ध में लीन हो जाता है और दुग्ध में लीन हुए दुग्ध को किसी भी प्रकार अलग करके

नहीं दिखलाया जा सकता उसी प्रकार अलौकिक दिव्य प्रकाश हमारे प्रकाश में लीन होकर अनिर्वचनीय स्वरूप का बन जाता है। सद्गुरु महाराज ही श्री शिव के स्वरूप हैं। “शिवो भूत्वा शिवं यजेत्” के कथनानुसार हम भी स्वयं शिवस्वरूप होके शिवरूप श्री गुरु की लोक कल्याण भावना के भागीदार होते हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि भव्य संकल्पों की सिद्धियां सद्गुरु-आराधना बिना प्राप्त नहीं हो सकती हैं। श्री सद्गुरु का सुन्दरतम शुभस्वरूप ही आनन्द और चैतन्य की साक्षात् मूर्ति है, और माया के आवरण से आवृत भक्तों के नेत्रों को दिव्यज्योति प्रदान करने के लिए श्री गुरु का स्वरूप ही अमृतांजन के तुल्य है। जिस प्रकार भुने हुए बीज अंकुरोत्पादनशक्ति से विहीन होते हैं उसी प्रकार सद्गुरुदर्शनमात्र भी सांसारिक अशुभ वासनाओं की फलप्रदा शक्ति को क्षीण बनाता है। हे सद्गुरु! सत्यमेव आपका दिव्यस्वरूप सोऽहंस्वरूप है और अभीष्ट ज्ञानदाता है। जिस प्रकार “सर्वदेव नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति” अर्थात् समस्त देव वर्ग को किया गया प्रणाम परात्पर विराट् स्वरूप को समर्पित होता है उसी प्रकार समस्त प्रकार के प्रणामादि तथा वन्दनादि कार्यजाल, श्रद्धा-भक्ति और अनुराग उसी वन्दनीय सद्गुरु के श्री चरणों में समर्पित होता है। जय गुरुदेव।

ईश्वराश्रम परिवार के लिए वसन्त पंचमी का आज का दिन अतीव स्पृहणीय है, क्योंकि आज सरिता विहार दक्षिण दिल्ली में स्थित ईश्वराश्रम भवन के निम्न तल का, सद्गुरु भक्तों की रविवासरीय दैनिक गुरु पूजा के लिए, विधिवत् उद्घाटन किया गया। सद्गुरु भक्तों की अच्छी संख्या की उपस्थिति में आज यहां विस्तृत गुरु पूजा का आयोजन किया गया। सद्गुरु महाराज की दिव्य शक्ति की स्फुरणा से भवन का सारा वायुमण्डल तथा आसपास का प्रदेश स्फूर्जित हो उठा। सारे भक्त लोग और साधक गुरु महाराज की विभूति का गुणगान करने में व्यस्त रहे। इस प्रकार पिछले कई वर्षों से दिल्ली स्थित ईश्वराश्रम परिवार के भक्तजनों की चिरसाध आज सद्गुरु महाराज की कृपा से संपूर्ण हुई। हमें आशा है कि भवन निर्माण का शेष कार्य इसी उत्साह से चलता रहेगा और सद्गुरु महाराज की जन्म जयन्ती तक ईश्वराश्रम ट्रस्ट का यह चिरअपेक्षित भवन पूर्णतया साकार हो उठेगा।

ईश्वराश्रम ट्रस्ट के अधिकारी उन दानवीरों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हैं जिन्होंने मुक्तहस्त दान देकर आज के दिन का यह सपना मूर्तिमान बनाने में पूर्ण सहयोग दिया। सरिता विहार में रहने वाले उन दानियों के हम परम आभारी हैं जिन्होंने इस महायज्ञ में श्रद्धापूर्वक आहुति डालने में किसी प्रकार की हिचकिचाहट नहीं की। आशा है कि सरिता विहार के ये महापुरुष आगे भी पूर्ण सहयोग आश्रम की सारी गतिविधियों में यथावत् देते

R-2, Pocket D, Sarita Vihar, New Delhi - 110 044. Phone : 6928308

रहेंगे और अपनी संस्कृति और सभ्यता के पुनरुत्थान के कार्यक्रमों में सदा अग्रसर रहेंगे।

ईश्वराश्रम ट्रस्ट के अधिकारी तथा सारा ईश्वराश्रम परिवार 'सोपुर कश्मीर निवासी कर्मयोगी स्वांगीय श्री शुकदेव जी गंजू के सुपुत्रों विशेषतया दानवीर श्री अवतार कृष्ण जी गंजू के आभारी हैं, जिन्होंने अपना अमूल्य समय गंवाकर इस आश्रम भवन के निर्माण कार्य में तन-मन-धन से सेवा की। इनकी सद्गुरु महाराज के प्रति श्रद्धाभक्ति अवर्णनीय है। इनकी हार्दिक इच्छा है कि यह 'ईश्वराश्रम भवन' न केवल सारे भारत के लिए एक आदर्श बने अपितु ईश्वरस्वरूप के अभूतपूर्व व्यक्तित्व को उजागर करने का भी प्रधान केन्द्र बने। "यह ईश्वराश्रम भवन" भव्य दुल्हन के समान आकर्षक हो" श्री गंजू जी के ये वचन हमारे कानों में सदा गूँजते रहते हैं और एतदनुकूल कर्म करने को प्रेरित करते हैं। हमारा सद्गुरु महाराज से सनम्र निवेदन है कि हम सब को ऐसी शक्ति दो कि हम इस अमोघमन्त्र को साकार करने के लिए जी जान से जुट जायें ताकि सद्गुरु महाराज की कीर्तिपताका को देश-विदेशों में फहरा सकेंगे।

समस्त ईश्वराश्रम परिवार को सहस्राब्दि के प्रथम वर्ष की हार्दिक शुभकामनायें।

जय गुरुदेव

बसन्त पंचमी, सोमवार
२९ जनवरी, २००१

प्रो० मखनलाल कुकिलू



MALINI - Quarterly Magazine

Annual Subscription : Rs. 80.00

Price Per Copy : Rs. 20.00

Overseas Subscription : US\$25.00

*All correspondence & subscription
must be sent to the Administrative Office :*

Ishwar Ashram Bhawan
2-Mohinder Nagar, Canal Road, Jammu Tawi - 180 002.
Phone : 555755, 553179

Information regarding printing & publishing etc. can be had from

Branch Office

R-5, Pocket D, Sarita Vihar, New Delhi - 110 044. Phone : 6958308

ŚIVA SŪTRAS

with Vimarśinī Sanskrit Commentary of Śrī Kṣemarāja

Īśvara Svarūpa Svāmī Lakṣmaṇa Joo Mahārāja

(continued from last issue)

ईदृश साधक साध्यस्य मन्त्रस्य पूर्वोपक्षिप्तं वीर्यं लक्षयति—ईदृश साध्यस्य—which is to be accomplished by the above kind of spontaneous effort, साधक—by the aspirant, मन्त्रस्य—of the mantra, पूर्वोपक्षिप्तं—previously referred to, वीर्यं—potency, लक्षयति—points the next sūtra:—

विद्याशरीर सत्ता मन्त्र रहस्यम्॥ ३॥

vidyā śarīra sattā mantra rahasyam

The state of totality of knowledge is the secret of Mantra or the great essence of mantra is establishment in the body of knowledge of oneness:

विद्या—पराद्वय प्रथा, शरीरं—स्वरूपं यस्य स विद्याशरीरो भगवान् शब्द राशिः, तस्य या सत्ता-अशेष विश्वाभेदमय पूर्णाहंविमर्शनात्मा स्फुरत्ता, सा मन्त्ररहस्यं—मन्त्राणां रहस्यं—उपनिषत्।

विद्या—knowledge is here, पराद्वय प्रथा—supreme knowledge of oneness, that is in real sense supreme god-consciousness, शरीरं स्वरूपं यस्य स विद्याशरीरो भगवान् शब्दराशिः—śarīram means svarūpa i.e. own form, vidyāśarīram means that multitude of words whose essence consists in vidyā-supreme knowledge of oneness. सत्ता—existence, अशेषविश्व—from the entire cosmos, अभेदमय—non-different, पूर्णाहंविमर्शनात्मा—the perfect I consciousness, स्फुरत्ता—the luminous being of, सा—that is, मन्त्ररहस्यं मन्त्राणां रहस्यं उपनिषत्—the secret of mantra - the mantra is universal I not individual I.

यदुक्तं श्री तन्त्रसद्भावे—as is said in Tantrasadbhāva:—

सर्वे वर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये।

शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया साच ज्ञेया शिवात्मिका॥ इति॥

सर्वे वर्णात्मका मन्त्राः—all letters are actually one with mantra, ते च शक्त्यात्मकाः—those मन्त्र are one with Śakti, शक्तिस्तुमातृका ज्ञेया—that Śakti

should be known as māṭṛkā, साचज्ञेया—that māṭṛkā should be known, शिवात्मिका—as the very form of Śiva.

The luminous being of the perfect I consciousness which is one with the whole world and which is everpresent in the countless words whose form consists in the knowledge of supreme I consciousness, is the secret of mantra. As is explained in Tantrasadbhāva – O Pārvatī all letters are actually one with mantra and those mantras are one with Śaktī, that Śaktī should be known as māṭṛkā. Māṭṛkā should be known as the very form of Śiva.

तत्रैव च अयमर्थः अतिरहस्योऽपि वितत्य स्फुटीकृतः—in that very book namely Tantrasadbhāva, the following matter though being very secret has been explained in detail:—

तथा च पीठिकाबन्धं कृत्वा—with the following introductory remarks:—

न जानन्ति गुरुदेवं शास्त्रोक्तान् समयांस्तथा।

दम्भ कौटिल्य निरता लौल्यार्थाः क्रिययोज्झिताः॥

अस्मात् तु कारणात् देवि मया वीर्यं प्रगोपितम्।

तेन गुप्तेन ते गुप्ताः शेषा वर्णास्तु केवलाः॥

न जानन्ति गुरुदेवं—those people who do not believe that their Master is Deva, शास्त्रोक्तान् समयांस्तथा—and who do not follow the discipline (आचार) as explained in śāstrās, दम्भ कौटिल्य निरता—and those who are crooked and intent upon hypocrisy, लौल्यार्थाः—attached to worldly pleasures क्रिययोज्झिताः—and are bereft of practical performance; अस्मात् तु कारणात्—on account of this, देवि—O Pārvatī, मया—by me, वीर्यं—the potency of mantra, प्रगोपितं— have been protected or concealed, तेन गुप्तेन—on account of this concealment, ते गुप्ताः—they are concealed, शेषा—the rest are, वर्णाः—the letters, केवलाः—only.

Those people who do not believe their Masters as Deva and who do not follow the discipline as explained in Śāstras and those who are crooked and intent upon hypocrisy, attached to worldly pleasures and are bereft of practical performance, O Pārvatī! on account of this the potency of mantras have been concealed and the rest are only the letters.

या सातु मातृका देवि परतेजः समन्विता।

तया व्याप्तमिदं विश्वं सब्रह्मभुवनान्तकम्॥

तत्रस्थं च सदा देवि व्यापितं च सुरार्चिते।

अवर्णस्थो यथा वर्णः स्थितः सर्वगतः प्रिये॥

तथाहं कथयिष्यामि निर्णयार्थं स्फुटं तव।

देवि!—O Devi, या सातु मातृका—that supreme divine mother परतेजः समन्विता—who is filled with supreme light-Prakāśa तया व्याप्तं इदं विश्वं—she has pervaded this whole universe, सब्रह्मभुवनान्तकं—from Brahmā upto the last bhuvana (from अनाश्रित शिव to gross physical world). देवि—O Devi अवर्णस्थो यथा वर्णः स्थितः सर्वगतः—just as all letters are found in first letter ‘अ’ (A). O goddess, सुरार्चिते—worshipped by all the gods. तत्रस्थं च—that lustre resides, सदा—always in Mātrkā, व्यापितं च—who is filled with it. तथाहं तव कथयिष्यामि—I shall tell you, स्फुटं—clearly, निर्णयार्थं—for your complete ascertainment.

O Devi! that supreme divine mother who is filled with Supreme Prakāśa has pervaded this whole universe from Anāśrita Śiva (अनाश्रित शिव) to gross physical world. O goddess, worshipped by all the gods. Just as all letters are found in first letter “अ” (A) in the same way this whole universe is found in you the divine mother. I shall tell you clearly this for your complete ascertainment.

या सा शक्तिः परा सूक्ष्मा निराचारेति कीर्तिता

हृद् बिन्दुं वेष्टयित्वान्तः सुषुप्त भुजगाकृतिः।

तत्र सुप्ता महाभागे न किञ्चिन्मन्यते उमे॥

चन्द्राग्निरवि नक्षत्रैर्भुवनानि चतुर्दश।

क्षिप्तोदरे तु या देवी विषमूढेव सा गता।

या सा शक्तिः—that divine mother कुण्डलिनी, कीर्तिता—is said, परा—to be supreme, सूक्ष्मा—subtle, निराचारेति—without any religious practices, सुषुप्त भुजगाकृतिः—she sleeps coiled up in the form of a snake, हृद् बिन्दुं वेष्टयित्वान्तः—who has covered the heart; the centre of awareness, न किञ्चित्

मन्यते—she does not perceive any perception महाभागे उमे—O illustrious Umā, तत्रसुप्ता—sleeping there, चन्द्र—moon, अग्नि—fire, रवि—sun, नक्षत्रैः—stars, भुवनानि चतुर्दश—fourteen worlds, क्षिप्तोदरे—puts in her body, या देवी—that divine mother, विषमूढेव सा गता—she is absolutely unaware of that nature neither awakened nor dead.

प्रबुद्धा सा निनादेन परेण ज्ञानरूपिणा
मथिता चोदरस्थेन बिन्दुना वरवर्णिनि॥

वरवर्णिनि—O fair one, प्रबुद्धासा—she gets awakened, निनादेन—with the throb, परेण ज्ञानरूपिणा—of the highest knowledge, मथिता—being churned, बिन्दुना—by the point of one pointedness, उदरस्थेन—present in her womb.

That divine mother Kuṇḍalinī is said to be supreme, subtle and beyond the burden of religious practices. She sleeps coiled up in the form of a snake, enclosing within herself the central point of onepointedness. O illustrious Umā: sleeping there she doesnot perceive any perception. She puts in her body the moon, fire, the sun, the stars and the fourteen worlds. She appears as if she is unaware of that nature.

O fair one! She gets awakened with the throb of the supreme knowledge of I consciousness (अहं परामर्श) being churned by the point of onepointedness present in her womb.

तावत् वै भ्रमवेगेन मथनं शक्तिविग्रहे।

भेदात्तु प्रथमोत्पन्ना बिन्दवस्तेऽतिवर्चसः॥

तावत् वै—Till with the, भ्रमवेगेन—whirling force, मथनं—the churning, शक्तिविग्रहे—in the body of the śakti, भेदात् तु—with the penetration of Śiva's light of consciousness, प्रथमोत्पन्ना—there appear at first, बिन्दवः—light drops, अतिवर्चसः—of great splendour.

The body of energy, situated in the body of divine mother Kuṇḍalinī, is churned by the awareness. First it is felt that every where from all sides up down, light drops of great splendour are going on. By those drops and निनाद that Kuṇḍalinī gets rise.

उत्थिता तु यदा तेन कला सूक्ष्मा तु कुण्डली।

चतुष्कलमयो बिन्दुः शक्तेरुदरगः प्रभुः॥

मथ्यमन्थन योगेन ऋजुत्वं जायते प्रिये।

यदा—when, सूक्ष्माकला—that subtle Śakti (कला) कुण्डली—circular, उत्थिता—is aroused, तेन—by that, प्रभुः—powerful, चतुष्कलमयः—four phased (बिन्दुः—four phased बिन्दुः consists of icchā, jñāna. Kriyā pertaining to Śakti and Svātantrya pertaining to Śiva) शक्तेरुदरगः—existing in the womb of Śakti जायते—assumes, ऋजुत्वं—straight position, मथ्यमन्थन योगेन—by the union of मन्थन—the churner Śiva and मथ्य—that which is churned Śakti.

When that subtle Kuṇḍalinī Śakti is aroused by that powerful four phased vinduḥ, existing in the womb of Śakti assumes straight position by the union of the churner Śiva and that which is churned Śakti.

ज्येष्ठाशक्तिः स्मृता सातु बिन्दुद्वयसुमध्यगा॥

बिन्दुना क्षोभमायाता रेखैवामृतकुण्डली।

रेखिणी नाम सा ज्ञेया उभौ बिन्दू यदन्तगौ॥

त्रिपथा सा समाख्याता रौद्री नाम्ना तु गीयते।

रोधिनी सा समुद्दिष्टा मोक्षमार्ग निरोधनात्॥

शशाङ्कशकलाकारा अम्बिका चार्ध चन्द्रिका।

एकैवेत्थं परा शक्तिस्त्रिधा सा तु प्रजायते॥

आभ्यो युक्त वियुक्ताभ्यः संजातो नववर्गकः।

नवधा च स्मृता सा तु नववर्गोपलक्षिता॥

सा—the Śakti, बिन्दुद्वयसुमध्यगा—that passes into the middle of two vindus i.e. of Śiva and Śakti, स्मृता—is known, ज्येष्ठाशक्तिः— as Jyeṣṭhnā Śakti. क्षोभमायाता—being agitated, बिन्दुना—by that vindu, रेखैव—the straight line is known as, अमृत कुण्डली—amṛta Kuṇḍalī, रेखिणी नाम सा ज्ञेया—she is known as रेखिणी—rekhiṇī, उभौ बिन्दू यदन्तगौ—at the ends of which are the two vindus, त्रिपथा सा समाख्याता—she is known as त्रिपथा—tripathā, रौद्री नाम्ना तु गीयते—and is named as Raudrī. रोधिनी सा समुद्दिष्टा—she is also known as Rodhinī, मोक्षमार्ग निरोधनात् for obstructing the path of liberation, शशाङ्क शकलाकारा—it takes formation of half moon shape, चार्धचन्द्रिका—with half

inside and half out side, अम्बिका—it is called अम्बिका it is the real state of Krama-mudrā, एकैवेत्थं पराशक्तिः—thus this supreme divine mother is only one, त्रिधा सा तु प्रजायते—she takes three formations आभ्यो—by these energies of divine mother Kuṇḍalinī, युक्तवियुक्ताभ्यः—by conjunction and disjunction, संजातो—are produced, नववर्गकः—nine classes of letters, नवधा—in nine ways स्मृता—known, सातु—that divine mother, नववर्गोपलक्षिता—characterized by nine classes.

In the body of that Kuṇḍalinī an aspirant finds vindu - kind of supreme semon, gets agitated there. That vindu residing in body of Kuṇḍalinī is of four projections or projecting centres. First projecting centre is subjective awareness, second centre is cognitive awareness, third centre is objective awareness and fourth centre is digestive awareness. (Awareness of the state of knower is प्रमातृरूप—subjective form (pramāṭṛ rūpa) awareness of the state of knowledge is objective form (प्रमाण रूप) awareness of the state of known prameya - cognitive form. Where subjective objective and cognitive projections are not known separately, they are digested in one is called awareness of the state of Pramiti (digestive state). These four kinds of awareness are centred four fold in the body of Kuṇḍalinī. O Devi this is to be done by मथ्यमन्थन योग—that which is to be churned. When this churning and churned both happen simultaneously, churning is there and that churned is there. When that churning is put in the body of Kuṇḍalinī it rises in straight line, that is known as Jyēsthā Śakti because it is in two vindus. At that time it is known as Rekhā (रेखा) because it is established exactly between the two बिन्दुः—one is Pramāṭṛ (प्रमातृभाव) subjective state and another awareness, is प्रमाण भाव (cognitive state) with there two बिन्दु objective awareness (प्रमेयभाव) also is attached by churning more and more then that Kuṇḍalinī rises in pure supreme semon from bottom to top. There that Kuṇḍalinī is called रेखिणी (Rekhini) These subjective and objective projecting centres are not found any where because these two are diluted there in supreme bliss of rise of semon. After this state yogi comes out atonce because there is no

tolerance of that joy of nectar it happens to every yogi. He takes the formation of all the three subjective, objective and cognitive centres, when these rise again from Kuṇḍalinī. This energy of Kuṇḍalinī is called Raudrī because it puts obstacles in the journey of that final liberation. What is to be done here? You have to go inside there again and again. Do not think you have lost there something. Do not want for master's instructions. Because it puts hurdles in the journey of that final liberation. What happens next that it takes the formation of half moon shape with half inside and half outside. It is the real state of krama-mudrā that takes place after being blessed because the yogī experiences this state at the end. Though this supreme divine mother is one. Yet she takes three formations one for inferior yogī, one for bhogī and one for superior yogī. By these energies of divine mother Kuṇḍalinī nine classes of letters are produced namely अ वर्ग, (from अ-a-to visargaḥ) क वर्ग Kavarga (from क to ङ) च वर्ग (from च to ञ) ट वर्ग from (ट to ण) त वर्ग (from त to न) प वर्ग (from प to म) य वर्ग (from य to व) श वर्ग (from श to ह) and क्ष (kṣa)

N.B. चन्द्राग्निरविनक्षत्रैर्भुवनानि चतुर्दश—

चन्द्र means moon; it symbolizes प्रमेय वर्ग—objective field. अग्नि means fire; it symbolizes प्रमातृवर्ग—subjective field. रवि means sun, it symbolizes प्रमाण वर्ग—field of knowledge. नक्षत्र means stars it symbolizes. संकल्प विकल्प—thought constructs

चतुर्दशभुवनानि—means fourteen worlds; it symbolizes fourteen vowels from अ to औ (a to au) अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ।

चतुष्कलमयोबिन्दुः means four phased vindu consists of इच्छा (icchā) ज्ञान (jñāna) क्रिया (kriyā) pertaining to Śaktī and स्वातन्त्र्य (svātantrya) pertaining to Śiva).

बिन्दुः—Binduḥ or vinduḥ means points. In two points—(:) lower point is that of Śakti and upper point is that of Śiva.

Raudrī (रौद्री) It is known as Tripathā (त्रिपथा) also because it is a line of इच्छा (icchā) ज्ञान (jñāna) and क्रिया (kriyā)।

Rodhinī (रोधिनी)—It acts as a bar or the dividing line between अशुद्धाध्वा (aśuddhādhvā) and शुद्धाध्वा (śuddhādhvā)

(To be continued)

MONISTIC ŚAIVITE PHILOSOPHY OF KASHMIR

Dr. B.N. Pandit

Kalidasa, depicting the beauty of Parvati says that the creator, having been desirous to see all beauty in one body, collected all those beautiful substances with which human beauty is compared to similes and arranging them in an artistic order created the form of Parvati. The same imagination is exactly true with the creation of the valley of Kashmir. Here one can find and enjoy all types of the beauties of nature knit together with an extraordinary artistic skill.

Extraordinary beauty has been granted not only to its mountains, hills, plains, meadows, fields, streams, springs, lakes, etc., but also to the bodies, hearts and heads of the inhabitants of this land.

The highly beautiful, sweet, tranquil and enchanting natural environment of this valley inspired Kashmiri writers and authors to compose very interesting works on poetry, drama, aesthetics and philosophy. Indian literature is abundantly rich in aesthetics and most of the important works on that subject have composed in Kashmir. The interpretations of the principles of Indian aesthetics, given by Kashmiri authors like Abhinavagupta and Mammata, hold good even today.

Jagaddhara Bhatta, a grammarian of artistic taste, could not relish the works of the school of Panini on account of their terseness and tastelessness. Consequently he composed *Balabodhini*, an easy and artistic work on the subject for the sake of his son Yasodhara. What a pity it is that this important work has not so far seen the light of the day even though its press-copy was being prepared by the Kashmir Research Department several years before India attained Independence.

Indian literature is, no doubt, wonderfully rich in spiritual philosophy. But most of the schools of our philosophy have never been practicable for common man. This has been the case with all the six Vedic *Darsanas* and also with the schools of Buddhism and Jainism. Nearly all these schools teach us to shut our eyes towards our worldly problems, renounce the worldly aims of life, ignore and forget our social, economic and political ills and try to attain some very lofty spiritual ideals. The

result of those impracticable and idealistic doctrines has been that we have, on the whole, been lagging behind in both worldly and spiritual aims of human life for the last several centuries.

No doubt, there appeared in India, from time to time, some very efficient and capable teachers of philosophy who were possessed of necessary pragmatic views on its theory and practice and Lord Krishna has been one of the best teachers among them. But the scholars of idealistic schools have very often interpreted their works in accordance with the traditional impracticable idealism.

The sweet and charming natural environment of Kashmir inspired the great thinkers of this land to originate and evolve such a philosophy which is easily and interestingly practicable and which is capable to yield both wordly and spiritual aims of life, side by side. That philosophy is the monistic Saiva philosophy of Kashmir.

The tradition of the practice of this philosophy was prevalent in the whole of India from the very pre-historic ages; but it was limited to some circles of sages and saints and was not written down in philosophic style. At the most it was expressed mystically in the form of ascetic poetry preserved even to this age in *Upanishads*, *Mahabharata*, *Yogavasistha* and some *Tantras* and *Puranas*. *Bhagavadgita* is a brilliant piece of that poetry. But even that poetry was taught and interpreted by many scholars in accordance with their impracticable idealism, because its influence had deep roots in their head. Therefore the exact significance of that poetry remained hidden from the eyes of our scholars and students. Only some saints and *yogis* realized it through esoteric practices of yoga.

One such mystic saint—named Sangamaditya, came to Kashmir sometime about the seventh century A.D. and settled down permanently in the valley. Four generations of his descendents and disciples taught his mystic philosophy to all deserving aspirants and expressed its principles in mysterious *Tantric style*. Somananda, the fifth presiding teacher of that school, studied all the important works on all the prevalent schools of Indian philosophy, tasted the sweetest results of the practice of *Saivistic Yoga*, realized the highest principles of the Saivistic spiritual philosophic

treatise named *Sivadrsti* in an elegant and lucid logical style.

His disciple Utpaladeva developed that philosophy to full extent in his *Isvarapratyabhijna* and *Siddhitrayi*. Abhinavaguta, a grand disciple of Utpaladeva, interpreted in clear terms both the theoretic and practical doctrines of the pragmatic spiritual philosophy in his famous commentaries and some wonderful independent works like *Tantraloka*, *Tantrasara*, *MaliniVijaya-Vartika*, etc.

These authors of the Saiva philosophy of Kashmir, born and brought up amongst the bounties of all types of charming and enchanting beauties of nature, did not preach any renunciation of sweet family life. They did not instruct their disciples to leave their homes and hearths or kith and kin and to wander in the garb of begging mendicants like the *Vedantic Sannyasins* or the Buddhist monks. Nor did they prescribe practice of any austere and painful penance in forests and hermitages. They did not at all propagate the practice of any sort of forced repression of one's emotions and instincts. Forced control of one's mind and senses was considered by them to be psychologically unsound and practically harmful and dangerous. Their approach to life to its aims and to the means to achieve those aims was sufficiently pragmatic in outlook. They did not deny the merits of prevalent Vedic rites and traditional household religious activities and in this way did not hurt the faith of common people. They never preached any sort of hatred towards any objects sweet to senses or towards their tasteful enjoyments.

These authors of Kashmir Saivism prescribed a new and easy path to attain the highest goal of life. It was the path of keeping one's eye of super awareness vigilantly fixed on his pure consciousness throughout all types of tasteful and tasteless sensual or mental experiences. They prescribed simple and easy practices of Saiva Yoga for the sake of the attainment of that vigilant awareness. Practice of that vigilant awareness results in the direct realization of the exact nature of one's real self.

These Saiva philosophers of Kashmir advised people to live as pious householders to enjoy tasteful worldly objects within the limits laid down by traditional social laws and to go on practising Saiva Yoga side by side.

An aspirant, having attained success in that practice and having relished the blissful experiences of self-awareness, starts to lose interest in sensual enjoyments, because he finds them far less tasteful in comparison to the bliss of that real self-awareness. Consequently he becomes more and more interested in the practice of that awareness and finally recognizes his real self to be that pure self evident and limitless consciousness which is all bliss by its basic nature and which is the source of all creation, preservation and absorption of the whole phenomenal existence by virtue of the pulsative or vibrative nature of that pure consciousness. Such a self recognition results in partial experience of one's practical Godhead and that makes his faith and belief in the principle of absolute theistic monism completely firm.

No restrictions of any caste, creed, sex, status, age etc. have been recognized with regard to initiation of a disciple into the fold of Saivism. Saints from both Hindu and Muslim communities, connected with the line of the disciples of Lallesvari, a Saiva Saint of the 14th century, are still practising this philosophy in Kashmir. All types of aesthetic, economic, social, political, religious and spiritual aims of life can be pursued through the practice of Kashmir Saivism. No problem of society, state, nation and individual is to be ignored according to this philosophy. A person cannot succeed in any aim of life if he shuts his eyes towards these problems. The whole life of Lord Krishna, as depicted in *Mahabharata*, is a glowing example of practical Saivism imparted to him by sage Durvasa.

Kashmir Saivism is the only school of Indian philosophy which can inspire us to achieve both material and spiritual progress. It alone can serve as a sound basis for our national aims of establishing a welfare state, on the one hand, and the real *Ramarajya*, on the other hand. This philosophy is to be presented in the present day style in the light of the psychology of the younger generations of our nation. But who is going to take a fruitful initiative in this task is a knotty problem.

The Pandits of the valley of Kashmir, throughout the extraordinary ups and downs in their history, have so far been able to keep this divine light glowing for centuries. But the revolutionary changes brought about by the modern history have changed the whole set-up of that small

community, and consequently the traditions of practising, teaching and learning of this philosophy are coming to a close in Kashmir. Sanskrit scholars outside Kashmir are not well acquainted with this philosophy. Some of them are, no doubt, devoting themselves to its study. But very often they confuse it with the idealism of the *Advaita Vedanta*. Somehow it appears to me that this philosophy must shine brilliantly once again, because we need it very badly and cannot proceed in our national aims without the support of such a philosophy.



HYMN TO THE UNIVERSAL MOTHER

Which spoken word isn't a hymn to Thee?
 When sound is the manifestation's Key.
 In every form I perceive You.
 My thoughts, my actions stem from Thee.
 Thus among the mortals, Mother Divine!
 Thou hast bestowed this attitude on me.
 Hardly does a breath comes in or out.
 That does not constitute a prayer to Thee.
 Singing Thy praise (Stuti), counting of beads (Japa).
 Offering of worship (Archana), meditation deep (Chintana)
 Thus hardly is a moment on my part.
 That is ever bereft of a Hymn to Thee.

Text

Tava ca, kācana na stutir Ambike
 sakala śabda-mayī kila te tanuḥ.
 nīkhila mūrṭiṣu mē bhavad-anvayo.
 manasijasū bahiṣ-prasrāsu ca
 iti vicintya śive śamitā śive
 jagati jātam - ayatna vaśāt idam
 stuti - japārcana - chintana varjitā
 na khalu kācana kāla kalāpi me.

(Courtesy by Samvit Prakash Dhar)

CONCEPT OF FULLNESS – PŪRṆATĀ IN KASHMIR ŚAIVISM

Prof. M.L. Kukiloo

We are proud of our great sages and seers who morally, spiritually and intellectually conquered the world through compassion, love and supernatural powers. The uncommon sages, saints, and literary-giants right from the divine sage “*Vasugupta*” of 8th century A.D. of Kashmir and right from the time of “*Ādi Śamkara*” of Kaladi to the present day spiritual luminaries, have won the minds and hearts of millions of people of India and abroad. Their message “*Vasudhaiva-kutumbakam*”-the entire world is our family, and oneness of all humanity is undoubtedly essential and meaningful in the present day strife-torn communities. It is our prime-duty to extol the wonder words and deeds of the luminaries of by gone days. The world renowned Indian philosophers had crusaded for the world peace, justice and brotherhood. Their spiritual preachings indeed had indoctrinated all types of seekers. People must follow them seriously and engage themselves in noble action and strive for unity with all their fellow beings. Intelectualls today are more busy promoting division rather than infostering unity. There are very few goodmen who seek to promote unity in diversity. The oneness of all mankind has to be realised. Names and forms are many, but the inherent divinity in every one is the same. As we see there are different lamps and bulbs everywhere but the current that flows in all is one and the same, similarly the divine spark in all human beings is one and the same, because the Divine is common to all. There is no separate God for Kashmir and separate God for New Delhi. All religions have one common divinity, one common super consciousness. As is said by “*Vasugupta*” in “*Śiva Sūtras*” that “*Caitanyamātmā*” i.e. universal consciousness is one’s own nature. This sudden flash of universal consciousness or transcendental consciousness is identical with “*Bhairava*” synonym of “*pūrṇatā*”-fullness or “*Anuttara*”. This “*Bhairava*” word has been lucidly explained by “*Acārya Abhinavagupta*” in his gigantic treatise namely “*Tantrāloka*”. The dyoen of Kashmir Śaivism “*Ācārya Abhinavagupta*” of 10th/11th century A.D., was the greatest exponent of the philosophy of Śaivism which lays more stress on practice

than to logical discourse. Apart from *Abhinavagupta's* erudition as a philosopher and being a versatile genius, his contribution to Indian thought is remarkable. Kashmir Śaivism is against prescribing the use of all types of saintly symbols and practising the profession of monks but advises to live the life of a householder and side by side practise *Śaiva-yoga* for self realization. It prohibits the suppression of one's emotions and instincts and preaches a path of their sublimation. It prescribes a path of "*Bhakti*"-the worldly enjoyments and "*mukti*"-the path of liberation, both of which can be pursued side by side. It advocates the principle of devotion "*Bhakti*" which makes it practicable. It did not at all try to disturb the age old religions of the masses. In addition to these outward aspects it laid a great emphasis on the practice of *Śaiva-yoga* i.e. to keep one's mind concentrated in meditation while enjoying outwardly all such means of sense pleasures. These sensual activities are not to be allowed to disturb the meditation. For that initiation of such a master is required who can easily and spontaneously control the mind and senses of his disciples and devotees. It is by the grace of such a master, he attains that state while doing all the worldly activities in awareness, he enjoys the divine bliss of "*Bhairava*". In Śaiva philosophy of Kashmir "*pūrṇā*", "*Bhairava*" or "*Anuttara*" is not only the highest God of all Devas but is indeed the supreme consciousness and reality of the entire universe.

While explaining the term "*Bhairava*" *Ācārya Abhinavagupta*" says:—

*"Viśvam bibharti pūrṇa dhāraṇa yogenā tena ca bhriyate
Savimarśatayās sva-rūpaśca samsārbhīru hītakṛta ca"*

Being in the form of fullness-*parīpūrṇa-Bhairava*, protects this whole universe, fills up this whole world and holds up also. Besides being full of *jñāna* and *kriyā* and by his real nature He is helpful to those who are being carried away by the ferocious thought currents.

Having "*pūrṇatā*" He unfolds the universe upon his own screen in himself as the basis by the power of His own will alone, neither by the will of another nor by means of any extraneous material cause etc. He unfolds this universe like a city in a mirror, which though one with it appears as different.

In "*Bhairava*" word "*Abhinavagupta*" further says that there are three

alphabets—bh—ra—va “bh”— means “bharanāt” “ra”—means “ramanāta” and “va”— means “vamanāta”.

“Bharanāta”— Being *pūrṇā*—full in every respect Bhairava protects this whole world. “Ramanāt”— because of his ‘*pūrṇatā*’ form He is present in every object. “vamanāt”— because of His ‘*pūrṇatā*’ he has digested this whole universe in Himself, as the world process is already contained in ‘*pūrṇā*’— anuttara He only lets it go or casts it out of Himself. We must keep this fact in our mind that Kashmir Śaivism has not translated the word “*Sṛṣṭi*” as creation. As per this philosophy this meaning is misleading ‘*Sṛṣṭi*’ is derived from the root “*Sṛja*” which means ‘to let go’ ‘to pour forth’ “to cast out”, So the word ‘*Sṛṣṭi*’ means emanation not creation. ‘*Samhāra*’ means reabsorption not destruction as there is no destruction of the world. Śiva reabsorbs it for some time and then casts it out of himself.

To re-affirm His excellence in ‘*pūrṇatā*’ it has been said in *Śaiva-āgama* that:—

*Sṛṣṭi sthiti tirodhāna samhārānugrahādica
turyamityapi devasya bahuśaktitva jṛmbhitam.*

Emanation maintenance, concealment, re-absorption, favour or grace etc. and integral awareness all these are the unfoldment of the various energies of Lord signifying his “*pūrṇatā*”—fullness.

This “*pūrṇatā*” or fullness is extolled as *Baindavīkalā* in *Śaivism*. It is that freedom of “parama śiva” by which the knower always remains knower and is never reduced to the known. This very “*pūrṇatā*” is termed as “*Bindu*” indicated by a dot on a letter, explaining the fact Śiva in spite of the manifestation of the universe is undivided. This undividedness or *pūrṇatā* is known as “*Ghanībhūtā śakti*”—compact creative force. It is *cidghanatā*—massive consciousness in which lie all the 118 bhuvanas—worlds and beings. It is pertinent to mention here that according to Kashmir Śaivism there are 118 “*bhuvanas*”. My Master Īśvara Svarūpa Svāmī Lakṣmaṇa Joo Mahārāja has once explained that the whole manifestation is divided into five phases the lowest is *nivṛttikalā*, and has sixteen Bhuvanas, *Pratiṣṭhākalā* consists fiftysix Bhuvanas, *Vidyā Kalā* contains twentyeight Bhuvanas, *śantākalā* contains eighteen Bhuvanas and *śāntātītā kalā* has no Bhuvanas. Thirtysix Tattvas or elements also are

being found in these five Kalās or phases. First phase namely Nivṛttikalā has Prithivī tattva and the second phase namely *pratiṣṭhā kalā* is formed of jalatattva to prakṛti tattva, third phase namely *vidyā kalā* is formed of *Puruṣa* tattva to māyā tattva, fourth phase namely *śāntā kalā* contains three tattvas i.e. *Śuddha vidyā*, *Īśvara* and *Sadāśiva* and fifth phase *śāntātītā kalā* has Śiva and Śakti tattva.

In Pratyabhijñā - the doctrine of recognition *Pūrṇatā* is defused as "avibhāga vedanātmaka rūpatā". To explain this fully we have to take the word "Aham" - where 'a' represents 'Anuttar' - the absolute - the unparalalled - the complete - Paripūrṇa - full from all sides and 'h' represents Śakti - the highest energy, the 'Bindu' or dot or 'Anusvāra' or point represents the fact that though Śiva is manifested right upto the earth through Śakti, He is not divided thereby, He remains undivided or Pūrṇa or full.

In Svachchanda Tantra—a supreme Kashmir Śaivāgama—it is said:—

“*Kulam śaktiriti proktam akulamśiva ucyate*” ‘*Kulam*’ means Śakti and ‘*akula*’ means Śiva. *Kula* (total) or the entire manifestation or the divine manifesting power is Śakti. One who is not lost in the total manifestation is ‘*akula*’ i.e. Śiva, that means who remains one and does not negate His fullness is called “*akula*”.

Great Sanskrit grammarian “*Pāṇinī*” was an ardent follower of Śaiva thought. He defines the term “*Pratyāhāra*” by saying “*Ādirantyena sahitā*” which means comprehension of several letters or affixes into one syllable, effected by combining the first letter with its final letter. So the ‘*Pratyāhāra*’ of “*a*” the first letter and “*ha*” the final letter would be “*aha*” which suggests “*aham*” meaning “*I or self*”. It includes all the letters of Sanskrit language. Since each letter indicates an object, so the ‘*Aha*’ indicates all objects of the universe. Thus the whole universe lies in Śiva in an undifferentiated state. This is the fullness—*pūrṇatā* of Śiva.

About ‘*pūrṇatā*’ or fullness, Ācārya Abhinavagupta expresses in 5th Āhnika of *Tantrāloka*, the following:—

Yatra koapi vyacchedo nāsti yat viśvataḥ sphurata
Yadanāhata samvitti parmāmṛta brmhitam
Yatrāsti bhāvanādin na mukyā kāpi samgatih
Tadeva jagadānandam

Where there is no limitation because of its flashing forth all round. Where the consciousness alone expresses itself because it remains always unattached. Where the nectar of divine joy expands and increases. Where meditations or imagination has nothing to do that is *Jagadānada*—the fullness or *pūrṇatā*. In short the universe appears in a form of the bliss of the self in *pūrṇatā* state. Explaining the state of “*pūrṇatā*” further Abhinavagupta says:—

*Pūrṇe avadhānam nahi nām yuktam
Nāpūrṇam abhyeti ca satyabhāvam*

It is not worthwhile to maintain alertness or one pointedness in *pūrṇatā* state, because *pūrṇatā* itself is alertness or super consciousness. One who has not achieved the *pūrṇatā* state cannot achieve the truthful nature. So it is futile to expect that meditation or imagination can be helpful in witnessing one's real nature in supreme fullness state.

*Yepi sākṣādupāyena tadru praviviñcate
Nūnam te sūrya samvittyai khdyotadhitsavojadāh*

Those who are advocating the attainment of fullness by vivid means certainly they are fools, for they are desirous of finding glow-worms in the effulgent light of the sun.

*Samvittattvam svaprakāśam
Ityasmīn kīṃnu yuktibhīḥ
Tadabāve bhavet viśvam
Jadtvāt aprakāśakam*

The state of fullness or supreme consciousness is self luminous. It is improper to explain it in manifold ways. This is the only way which excels all. If there would not have been the self illumining quality in this fullness state, every thing would have been insatiant and lifeless. How can an incomplete part is expected to come into existence in the fullness state. If we presume that incomplete part also is luminous then there is no possibility of the existence of the incomplete part. There cannot co-exist another fullness or supreme consciousness in the glowing form of fullness, because that is one and absolute.

(To be continued)



विज्ञानभैरव - समीक्षात्मक अध्ययन

मूल प्रवचनकार— शैवाचार्य ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजू महाराज

(गतांक से आगे)

अस्य सर्वस्य विश्वस्य पर्यन्तेषु समन्ततः।

अध्वप्रक्रियया तत्त्वं शैवं ध्यात्वा महोदयः॥ ५६॥

(अन्वय—अस्य सर्वस्य विश्वस्य पर्यन्तेषु समन्ततः अध्वप्रक्रियया शैवं तत्त्वं ध्यात्वा महोदयः (स्यात्)।)

इस सारे संसार के सीमान्तों तक चारों ओर अध्व प्रक्रिया से प्रकाश विमर्शरूप शिव स्वरूप का ध्यान करने पर साधक का महान् उदय हो जाता है अर्थात् उसको परमशिव का साक्षात्कार प्राप्त हो जाता है।

यह धारणा की एक और सर्वोच्च प्रक्रिया है। हमें इस प्रक्रिया के साथ कुछ और जोड़ना है। अपने उद्यान में खड़े रहो या बैठे रहो। खड़े रहते हुए इस सारे विश्व का अवलोकन करो। कल्पना करो कि आपके इर्दगिर्द यह सारा विश्व अवस्थित है और इस अध्वप्रक्रिया को आप निहार रहे हो। यह विश्व कितना महान् है। यह विश्व कितना विशाल और विस्तृत है। इस विश्व के नीचे क्या है? इस विश्व के ऊपर क्या है? मात्र कल्पना करो कि एक सौ अठारह भुवन आपके इर्दगिर्द हैं, आपके ऊपर हैं, नीचे हैं आपके शरीर के नीचे हैं। आपने यह अनुमान लगाना है कि यह सारा विश्व मेरा निजी अहंपरामर्श है और मैं एक सौ अठारह भुवनों वाले इस विश्व के प्रत्येक भाग में व्याप्त हूँ। यही अध्व प्रक्रिया है। यह एक पारिभाषिक शब्द है। अध्व प्रक्रिया से लोकमार्गसंचार अभिप्रेत है।

यह मुख्य शाक्तोपाय प्रक्रिया है। इस विश्व की अनन्तता पर विचार करो और मान लो कि यह सारा ईश्वर का ही साम्राज्य है, साम्राज्य है मेरे चित्त साम्राज्य की चेतना का, मेरी संवित् का, मेरे अहं परामर्श का। तब महोदय प्राप्ति होती है। महोदय का तात्पर्य है कि अन्त पर परम शिव का साक्षात्कार प्राप्त हो जाता है। इसी को अध्व प्रक्रिया कहते हैं। अनेक स्थानों पर इसका संकेत है कि “न प्रक्रियायाः परं ज्ञानम्” अर्थात् प्रक्रिया ज्ञान से बढ़कर कोई दूसरा ज्ञान नहीं है। अध्व प्रक्रिया ही प्रक्रिया ज्ञान है। प्रक्रिया ज्ञान से अभिप्रेत है कि यह जानना कि सारा विश्व मेरा ही निजी स्वरूप है। यह मेरा ही स्वात्म विस्तार है। यह शुद्ध शाक्तोपाय धारणा है। यही “सर्वं अहं” दशा है। “शैवं तत्त्वं” से तात्पर्य है कि अध्व प्रक्रिया से परमशिव साक्षात्कार प्राप्ति होती है।

विश्वमेतन्महादेवि शून्य भूतं विचिन्तयेत्।

तत्रैव च मनो लीनं ततस्तल्लयभाजनम्॥ ५७॥

(अन्वय—हे महादेवि! एतत् विश्वं शून्यभूतं विचिन्तयेत्! तत्रैव च मनः लीनं (कुर्यात्) ततः (एवं करणेन) तल्लयभाजनं जायते।)

हे महादेवि! साधक को ऐसा समझना चाहिए कि यह स्थावर जंगमात्मक विश्व शून्यभूत है अर्थात् कुछ नहीं है। इसी के साथ इसी भावना में अपने मन को भी लीन कर देना चाहिए। ऐसा करने से वह साधक लय का पात्र बन जाता है। अर्थात् साधक स्वरूप में तल्लीन हो जाता है।

हे महादेवि! मान लो कि यह विश्व निराधार है। यह केवल शून्य है। यहां कुछ ठोस नहीं है। यह कुछ नहीं है। यह केवल शून्यातिशून्य है और इसी शून्यातिशून्य में अपने मन को स्थैर्य से स्थापित करना है।

तत्रैव च मनो लीनं - इसी में आपका मन लीन हो जावे। इसी महान् और विस्तृत शून्य में लीन हो जावे।

ततः— तदनन्तर साधक परम शून्यातिशून्य में प्रवेश करने के योग्य हो जाता है। जब वह साधक उस शून्य में सुस्थित हो जाता है अथवा अपने मन को उस शून्य में परम लीन करता है तत्पश्चात् ही वह उस अहंपरामर्श की परमशून्यावस्था में प्रवेश पाने के योग्य बन जाता है।

यह शाम्भवोपाय धारणा है पर शाक्तोपाय के कुछ संस्कार भी इस में विद्यमान हैं।

घटादिभाजने दृष्टिं भित्तीस्त्यक्त्वा विनिक्षिपेत्।

तल्लयं तत्क्षणात् गत्वा तल्लयात्तन्मयो भवेत्॥ ५८॥

(अन्वय—घटादि भाजने भित्तीस्त्यक्त्वा दृष्टिं विनिक्षिपेत्। तत् क्षणात् तल्लयं गत्वा तल्लयात् तन्मयो भवेत्।)

भीतर से खाली मानकर, घट आदि पदार्थों के आसपास के दीवारों को छोड़कर अपनी दृष्टि को सीधे उस पात्र के भीतर स्थित शून्यता में लगावे। इस धारणा से साधक का मन जब घटस्थित आकाश में विश्रान्त होता है तो वह यह भावना करे कि उसका मन शून्यातिशून्य में विलीन हो गया है। इससे साधक तन्मयीभाव में (ब्रह्मभाव में) विलीन हो जाता है।

किसी घट, जग (Jug) या गिलास या पात्र को अपने सामने रखो। कुछ देर के लिए

सावधानता से अपनी दृष्टि किसी एक पर लगाये रखो और यह मान लो कि यह निरा एक पात्र है; बाहिरी आधार के बगैर। अर्थात् न मिट्टी है, न शीशा है न तांबा है न स्टील है न अन्य सामग्री है। यह केवल पात्र है कुछ धरने के लिए। बाहिर से रूप रंग के बगैर है।

भित्तीस्त्यक्त्वा — आस-पास के दीवारों के विना। किसी विशेष सामग्री या किसी विशेष आकार के विना, या किन्हीं विशेषताओं के विना।

किसी भक्त के यह पूछने पर कि क्या यह केवल भाव है? तो स्वामी जी महाराज प्रत्युत्तर में बताते हैं कि यह भाव नहीं है। केवल उस विशेष पात्र की ओर देखो मान लो कि यह केवल शून्य है। यहां कुछ भी नहीं है। इस पात्र के ऊपर मिट्टी का या कीचड़ का या किसी अन्य पदार्थ का आवरण नहीं है। यह पात्र है विना बाह्य साधन के।

यह शाम्भवोपाय प्रक्रिया है।

घटादि भाजने दृष्टिं — कल्पना करो कि आपके सामने कोई है। यह उसका आकार है पर उस की देह संरचना नहीं है। यह केवल शून्य है।

तत् लयं तत् क्षणात् गत्वा — ज्यों ही साधक उस पात्र के शून्य में समा जाता है उसी क्षण वह स्वरूप लाभ की शून्यावस्था में कदम रखता है। यही शाम्भवोपाय है।

किसी भक्त के पूछने पर कि क्या आंखें मीचकर प्रवेश करना होता है? तो स्वामी जी कहते हैं कि आंखें मीचकर नहीं अपितु खुली आंखों से इस धारणा का अनुभव करना चाहिए। तो क्या यह शाक्तोपाय विधि तो नहीं है? स्वामी जी कहते हैं कि यह शाक्तोपाय विधि नहीं अपितु यह शाम्भवोपाय है क्योंकि आपने कुछ नहीं देखना है। आंखें खोल के रखो पर देखो कुछ नहीं इस तरह देखते रहो। देखना क्या है? केवल शून्य को। क्योंकि वहां और कुछ नहीं।

किसी शिष्य के पूछने पर कि टीकाकार ने घटादि भाजने का अर्थ “अन्तः सुषिरे” किया है। स्वामी जी महाराज इसका क्या तात्पर्य है? स्वामी जी कहते हैं कि सुषिर का तात्पर्य पोलापन (खालीपन) से है जो एक पात्र के अन्दर है। मान लो यह केवल खालीपन है और कुछ नहीं। इसमें अन्य विशेषताओं का अभाव है। इसके दीवार कहीं नहीं हैं। इन दीवारों को भी शून्य दृष्टि से ही देखो।

तो क्या हम यह समझें कि यह वही है जो है? तो स्वामी जी इसकी हामी भरकर कहते हैं कि इसका भी अपना देश है।

तो क्या इस की प्रतिच्छाया देखकर हम यह समझें कि यह प्रतिच्छाया निराधार है?

स्वामी जी कहते हैं कि हां वहां कोई आधार नहीं है। तो क्या इस क्रिया में सब कुछ चिन्तन पर निर्भर है? स्वामी जी पूछते हैं कि किसके चिन्तन पर? क्या दर्शक के चिन्तन पर पात्र की सत्ता को देखके?

स्वामी जी इस प्रश्न का उत्तर और सरल बनाकर समझाते हैं कि यह सब कुछ स्वरूप लाभ की ही परिकल्पना है। इसमें दर्शक के 'अहं' को न जोड़िये क्योंकि ज्यों ही हम 'अहं' को जोड़ेंगे तो यह परिमित प्रमाता बनेगा। हमें यह विचारना है कि यह केवल अहं परामर्श का ही प्रसार है। यह मेरी चेतना में विद्यमान "अहं" नहीं है यह "अहं परामर्श" है। यह विश्वात्मभाव है।

निर्वृक्षगिरिभित्त्यादि देशे दृष्टिं विनिक्षिपेत्।

विलीने मानसे भावे वृत्तिक्षीणः प्रजायते॥ ५९॥

(अन्वय—निर्वृक्ष गिरि भित्त्यादि देशे दृष्टिं विनि क्षिपेत् (भावनयाऽनया) मानसे भावे विलीने सति (योगी) वृत्ति-क्षीणः प्रजायते।)

वृक्षरहित प्रदेश बंजर भूमि पर, पर्वतों पर, दीवारों पर या खुले भूखण्ड पर अपनी दृष्टि स्थिर करने का अभ्यास करे। इस भावना से आलम्बन के अभाव में मानस भाव अर्थात् चित्त के स्वरूप के विलीन होने पर साधक की सारी वृत्तियां प्रक्षीण हो जाती हैं और वह स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो जाता है, अर्थात् आवरणों के नष्ट होने पर प्रकाशमय स्वरूप प्रकाशित हो उठता है। क्योंकि जब मन की अवस्था सुदृढ़ होती है तो दोलायमान परिकल्पनायें विगलित हो उठती हैं।

साधक को चाहिए कि वह एक खुले मैदान में चले जहां वृक्ष न हों, पर्वत न हो अन्य आलम्बन न हों, मकान न हों, मार्ग न हों, झरने न हों, कोई आकार-प्रकार न हो, केवल टूठापन हो इर्द-गिर्द मरुस्थली के समान।

निर्वृक्ष गिरि भित्त्यादौ—जहां वृक्ष न हों पहाड़ न हो, दीवार न हों। उस स्थान पर आईये बैठिये या खड़ा रहिये।

दृष्टि विनिक्षिपेत्—आंखें खोल कर उस भू भाग को देखिये, उस मरुस्थली को देखिये। देखिये वहां कुछ नहीं है वहां केवल शून्य का साम्राज्य है।

विलीने मानसे भावे—जब निर्विकल्प भाव सुस्थिर होता है तो तत्क्षण

वृत्तिक्षयो प्रजायते—सारे आवरणों के नष्ट होने पर ब्रह्मस्वरूप प्रकाशित हो उठता है।

विलीने का तात्पर्य विगलित होना न होकर सुस्थिर होता है ही इष्ट अर्थ है।

यह शाम्भवोपाय धारणा है॥

उभयोर्भावयोर्ज्ञाने ध्यात्वा मध्यं समाश्रयेत्।

युगपत् च द्वयं त्यक्त्वा मध्ये तत्त्वं प्रकाशते॥ ६०॥

(अन्वय—उभयोर्भावयोर्ज्ञाने मध्यं ध्यात्वा (तं) समाश्रयेत्। (तत एव च) द्वयं युगपत् त्यक्त्वा मध्ये तत्त्वं प्रकाशते।)

दो भावों के ज्ञान काल में, (इन दोनों के) मध्य में ठहरे शून्य को ध्यान के द्वारा ग्रहण कर उसमें चित्त को एकाग्रता के अभ्यास से दृढ़ कर दे। इसके सुदृढ़ होने पर एक साथ दोनों भावों का परित्याग करने पर परतत्त्व मध्य में प्रकाशित हो उठता है।

किन्हीं दो पदार्थों को लो। इन पदार्थों पर ध्यान धरो उदाहरण के तौर पर ऐनक को एक ओर रखो ओर कागज को दूसरी ओर। इन्हीं दो पदार्थों पर एकाग्र चित्त रहो फिर इन दो पदार्थों के मध्य में सुस्थित रहो। जैसे पहले हमने ऐनक का समालोचन किया उसके पश्चात् दूसरे पदार्थ कागज का समालोचन किया। पहिले पदार्थ के समालोचन के पश्चात् दूसरे पदार्थ की समालोचन प्रक्रिया तक बीच में जो शून्य है उसी को मध्यनाम दिया गया है। इसी 'मध्य' पर हमें समाहितता बरतनी है।

'मध्य' से तात्पर्य मध्यम धाम से है। इसी मध्य पर समाहित होना है। जब हम इस मध्य पर समाहित हो रहे हैं हमें इस पर सुस्थित होना चाहिये। जब हम इस मध्य पर सुस्थित हो गये तो तत्क्षण हमें इस का आभास छोड़ना चाहिए। फिर इन दोनों पदार्थों के संस्कार शेष को भी एक साथ त्याग दे। जब हम इस 'मध्य' में सुस्थित बन पड़े तो पर तत्त्व का अनावरण तत्काल होता है।

यह शाक्तोपाय है जिसका उल्लेख तन्त्रालोक के प्रथम आह्निक में विस्तार से हुआ है। यह धारणा शाक्तोपाय प्रक्रियाओं में से सर्वोत्तम प्रक्रिया है।

किसी शिष्य के पूछने पर कि 'मध्य' से क्या अभिप्रेत है? तो स्वामी जी प्रत्युत्तर में बताते हैं कि मध्य से तात्पर्य इन उक्त दो पदार्थों के मध्य से है अर्थात् जब इन पदार्थों के मध्य में हम प्रवेश पाते हैं तो हमें इन दो पदार्थों का प्रायः आश्रय लेना पड़ता है। पहले एक पदार्थ को देखो फिर दूसरे पदार्थ को देखो फिर इन दोनों के बीच में जो अवकाश है उस मध्य को देखो। जब वह मध्य सुस्थिर हुआ तब हमें दोनों का संस्कार लेश भी त्यागना है और उस मध्य में सुस्थित होना है। तभी परम मध्यम धाम का अनावरण होगा।

यही शाक्तोपाय है।

and political ill and try to attain some very lofty spiritual ideals. The

जब हम सांस लेते हैं या सांस छोड़ते हैं तो हमें उसी समय प्राणापान गति की, मध्यधाम में सुसंस्थित होने के लिए, सहायता लेनी चाहिए। जब श्वासोच्छ्वास का मध्य अर्थात् सन्धि का परिचय हुआ तो प्राणापान को एक ओर छोड़ो और उसी सन्धिधाम में प्रवेश पावो। और इस तरह परम मध्यम स्थान का प्रकाश अनावृत होगा। यहीं आप शाक्तोपाय में पधारेंगे। इसे शाम्भवोपाय नहीं समझना स्वामी जी इसी उक्त विधि को निमीलन समाधि भी कहते हैं। और पञ्चदशी ग्रन्थ में इसी विधि को अनाख्या स्थिति कहते हैं।

(क्रमशः)



स्मरण रहे कि सुश्री शारिका देवी योगिनी होने के साथ साथ आशु कवयित्री भी थी। इनका कवित्व परमार्थ के अनाघात पुष्पों की महक को लेकर उन्मत्त बनाता था। इनके ये भाव परावाक् में अवस्थित विचारमाला के स्फटिक दाने होते थे जो अपने नैर्मल्य से चकाचौंध करते थे। प्रस्तुत 'कौन है' तथा 'हम हो रहे' कवितायें रहस्यवाद और छायावाद की मिश्रित छाया को चित्रित करने में सक्षम हैं। भाषा और भाव उत्तरोत्तर हैं।

कौन है?

सुश्री शारिका देवी

कौन है चिरकाल से जो
दिल की धड़कन में छुपा है?
सूक्ष्म अवगुण्ठन के पीछे
नित इशारे कर रहा है
मन्द मीठी मुस्कराहट
से मुझे ललचा रहा है॥

कौन है चिरकाल से जो
दिल की धड़कन में छुपा है?

चन्द्रमा की रश्मियों से
 चान्दनी बरसा रहा है
 गगन के फैलाव द्वारा
 विस्तृत्व को दर्शा रहा है
 दीप आशा के जलाकर
 सुखद स्वर में गा रहा है

कौन है चिरकाल से जो
 दिल की धड़कन में छुपा है?

सांस के हर लय उदय में
 चेतना की प्रतिस्फुरण में
 कल्पना में स्मृति दल में
 काल की हर चाल में जो
 नित नया ही रूप धरकर
 अनवच्छन्न सा छा रहा है।

कौन है चिरकाल से जो
 दिल की धड़कन में छुपा है?

विरह जिसकी वेदनाप्रद
 है स्मृति जिसकी अति सुखद
 काल के पर भी कभी
 छीने नहीं पाते जिसे
 उमड़ते भावों के पीछे
 आज फिर वह हस रहा है।

कौन है चिरकाल से जो
 दिल की धड़कन में छुपा है?

गुरु स्मृति बेला खिल उठी
 विकसित हुआ हृदय मेरा
 तृप्त हो गए प्यासे नयन
 हंसने लगा मानस भ्रमर
 चित्त की तरङ्गों में सहज
 अनुपम छबि दिखला रहा है।

कौन है चिरकाल से जो
 दिल की धड़कन में छुपा है?



३ हम हार बैठे

ढूँढ़ने निकले थे हम
प्रीतम को, खो बैठे मगर
अपने को हम, कैसी सितम?
कहने लगे “क्या फिर करोगे दिललगी?”

हम ताकते मुंह रह गए
और मूक थी भाषा मेरी
उफ नयन मेरे झुक गए॥ १॥

लज्जा ने आघेरा मुझे
तब मुस्कराते कह उठे
चित चोर प्यारे धन्य हो
हम हार बैठे, हम तुम्हारे हो गए
गद्-गद् मेरा हृदय हुआ
थर-थर खाँ आँसू हुए
उफ नयन मेरे भर गए॥ २॥



In the beginning was the Word, and the Word was with God, and the Word was God. He was in the beginning with God; all things were made through Him, and without Him was not anything made that was made. In Him was life and the life was the light of men. The light shines in the darkness, and the darkness has not overcome It.

Svāmī Lakṣmaṇa Joo Mahārāja

ॐ
श्री तन्त्रालोकविवेके श्री जयरथाचार्यपादैः

स्तुता योनिसमुद्भूताः जयाद्यारुद्राः

भाषानुवादक - प्रो० मखन लाल कुकिलू

संकेत

ई० सन् १९८५ जून मास में हमारे सद्गुरु ईश्वर स्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी महाराज ने; आचार्य अभिनव गुप्त के विशालकाय ग्रन्थ तन्त्रालोक के टीकाकार आचार्य जयरथ कृत द्वितीय आह्निक से ग्रन्थ समाधि तक प्रत्येक आह्निक के आरम्भ में संबद्ध रुद्रों के नामों का विवरण दिया। इस प्रकार ३७ आह्निकों वाले तन्त्रालोक के ३६ आह्निकों में संबद्ध रुद्रों की अवर्णनीय स्तुति जो की गई है। वह पूर्णतः शैव दर्शन रहस्य निधि है। हमारे सद्गुरु महाराज ने अपने अनुभव के आधार पर इन रुद्रों के वाचक मन्त्राक्षरों के अभूत पूर्व रहस्य का भी उद्घाटन किया है। अतः यहां पर प्रत्येक रुद्र की स्तुति के साथ साथ गुरु मुखागत उन्हीं मन्त्राक्षरों का अंकन किया गया है जिनका मनन व चिन्तन सम्बद्ध रुद्र के ध्यान के साथ साथ करने से उक्त रुद्र सिद्धि सहज हो जाती है। मालिनी के आज के अंक से क्रमशः केवल पांच पांच रुद्रों की स्तुति भाषानुवाद सहित प्रस्तुत की जा रही है। आशा है साधकों को इससे महान् लाभ होगा।

तन्त्रालोक विवेक के द्वितीय आह्निक से सम्बद्ध “जय रुद्र” नामक

रुद्र की स्तुति तथा उसका मन्त्राक्षर “क”

जयतान्नतजनजयकृत् स जयो रुद्रो विनाभ्युपायं यः।

पूरयति कं न कामं कामं कामेश्वरत्वेन॥ १॥

जयतात् - विजय शील होवे, नत जन - प्रणत जनों को, जयकृत् - विजय शील बनाने वाला, स - वह, जयो रुद्रः - जयनायक रुद्र देवता, विनाभ्युपायं - किसी विशेष उपाय के बिना, यः - जो, पूरयति - संपूर्ण करता है, सिद्ध करता है, कं न काम - किस इच्छा को नहीं, कामं - अतिशयरूप से, कामेश्वरत्वेन - सारी कामनाओं का अधिपति होने के नाते।

सारी कामनाओं का अधिपति होने के कारण भी किसी विशेष उपाय के बिना ही, संपूर्ण कामनाओं को अतिशय रूप से सिद्ध करने वाला तथा शरणागतों को विजय दिलाने

वाला जयनामक रुद्र देव विजयशील होवे ॥

उपाय से यहां आणवोपाय, शाक्तोपाय और शांभवोपाय की ओर संकेत है। इन उक्त उपायों को अपनाने के बिना ही यह अनुदाय विधि है।

कामनाओं से यहां अणिमादिअष्टसि सिद्धियां अभिप्रेत हैं। इस रुद्र का मन्त्राक्षर 'क' है। जिसका ध्यान मनन और चिन्तन करने से कामेश्वरत्व पद प्राप्त होता है।

तंत्रालोक विवेक के तृतीय आह्निक से सम्बद्ध "विजय रुद्र"

नायक रुद्र की स्तुति तथा उसका मन्त्राक्षर "ख"

स्वात्मत्वेऽपि विचित्रं निखिलमिदं वाच्यवाचकात्म जगत्।

दर्पणनगरवदात्मनि विभासयन्विजयते विजयः॥ २॥

खात्मत्वेऽपि पाठांतर है -

स्वात्मत्वेऽपि - स्वात्मरूप होने पर भी, विचित्रं - आश्चर्यकारी, निखिलं - सारा, इदं - यह, खात्मत्वेऽपि - शून्यरूप होने पर भी। वाच्यवाचकात्म जगत् - वाच्य वाचक रूप संसार, दर्पण - नगरवत्-शीशे में (mirror) प्रतिबिम्बित (reflected) नगरी की तरह, आत्मनि - अपने में, विभासयन् - प्रकाशित करता हुआ, विजयते - जयनशील हो रहा है, विजयः - विजय नामक रुद्र।

स्वात्मरूप अथवा शून्य रूप होने पर भी इस अद्भुत वाच्य वाचक रूप समस्त विश्व को, दर्पण में प्रतिबिम्बित नगरी की तरह जो अपने में प्रकाशित करता है उस विजय नामक रुद्र की जय जयकार हो।

वाच्य वाचकात्म जगत् - इस षडध्वात्मक जगत् में "भुवनाध्वा", "तत्त्वाध्वा" और "कलाध्वा" नामक वाच्यवर्ग प्रकाशरूप शिव से उद्भूत है, और "वर्णध्वा" "मन्त्राध्वा" और "पदाध्वा" नामक वाचक वर्ग विमर्श से उद्भूत है। इस प्रकार प्रकाश और विमर्श स्वरूप परमेश्वर ही शिव है।

दर्पण नगरवत् - दर्पण में दिखाई पड़ने वाले नगर के प्रतिबिम्ब की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं, दर्पण आदि में लग जाने पर ही वह प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। परन्तु बिम्ब की स्वतन्त्र सत्ता होती है। यह बिना किसी की सहायता के प्रकाशित होता है। यह जगत् भी दर्पण में प्रतिबिम्बित नगरी के समान शिवमय दर्पण में भासित हो रहा है। आग में गरमी की तरह, जल में शीतलता की तरह शिव का यह स्वभाव है कि वह अपने में ही अपने विज्ञानमय स्वरूप को विश्व के रूप में भासित होने देता है।

should be शिवलिङ्ग इस रुद्र का मन्त्राक्षर 'ख' है। जिसका चिन्तन व मनन करने से निर्विकल्प शून्य स्थिति में अपने चित्त को समाहित करने का प्रयास सफल होता है। 'खात्मत्वे' से 'ख' बीज की ओर संकेत।

तंत्रालोक विवेक के चतुर्थ आह्निक से सम्बद्ध "जयन्तरुद्र" नायक रुद्र की स्तुति तथा उसका मन्त्राक्षर "ग"

यो दुर्विकल्पविघ्नविध्वंसे सद्विकल्पगणपतिताम्।
वहति जयतात् जयन्तः स परं परमन्त्रवीर्यात्मा ॥ ३ ॥

यो - जो जयन्त नामक रुद्र, दुर्विकल्प - बुरे विकल्पों रूपी, विघ्न - बाधाओं के, विध्वंसे - नाश करने में, सत् विकल्प - अच्छे विकल्पों रूपी, गणपतितां - नेतृत्व पद को, वहति - धारण करता है, स - वह, परमन्त्र वीर्यात्मा - श्रेष्ठ मन्त्र वीर्य स्वरूप, जयन्तः - जयन्त नाम वाला रुद्र, परं - अत्यधिक रूप से, जयतात् - विजयशील होवे।

जो जयन्त नामक रुद्र बुरे विकल्पों रूपी विघ्नों का नाश करने में सत् विकल्प रूपी गणपति पद को धारण करता है वह श्रेष्ठ वीर्य स्वरूप रुद्र अतिशय रूप से, विजयशील होवे।

गणपतिता गुण - सभी इन्द्रियों पर अहन्तारूपता से शासन करने वाला, पति - स्वामी। परमन्त्रवीर्यात्मा - दिव्य तेज की प्रसवित्री पराशक्ति के साथ संघट्ट के परिणाम स्वरूप उस श्रेष्ठ अहं परामर्श का अनुभव जो मातृका मालिनी स्वरूपात्मक अक्षय मन्त्रों का प्रसूति स्रोत है।

इस रुद्र का मन्त्राक्षर "ग" है जिसके ध्यान चिन्तन व मनन से परमन्त्रवीर्यानुभव होता है।

तंत्रालोक विवेक के पंचम आह्निक से सम्बद्ध "अपराजित रुद्र" नायक रुद्र की स्तुति तथा उसका मन्त्राक्षर "घ"

यो नाम घोरनिनदोच्चारवशाद्भीषयत्यशेषंजगत्।
स्वस्थानध्यानरतः स जयत्यपराजितो रुद्रः ॥ ४ ॥

यो नाम - जो विश्वय करके, घोर निनदोच्चार वशात् - भयानक शब्द करने से, भीषयति - डराता है, अशेष जगत् - समस्त संसार को, स्वस्थान - अपने स्थान या

अपने पद पर ही, ध्यानरतः - ध्यान में लगा हुआ, स अपराजितो रुद्रः - वह अपराजित रुद्र, जयति - विजयशील हो।

निश्चय करके जो अपराजित रुद्र, समस्त विश्व को भयानक निनाद करने से डराता है। अपने पद पर ही ध्यान में लगे हुए उस अपराजित रुद्र की जय जयकार हो।

उच्चार, ध्यान, स्थान आदि की ओर संकेत करने से आणवोपाय की प्रकल्पना इस रुद्र के निर्देश से की गई है।

इस रुद्र का मन्त्राक्षर 'घ' है। जिसके चिन्तन व मनन से आणवोपाय में संस्थिति सुदृढ़ होती है॥

तंत्रालोक विवेक के छोटे आह्निक से सम्बद्ध

“सुजय रुद्र” नायक रुद्र की स्तुति तथा उसका मन्त्राक्षर “ङ”

कवलयितुं किल कालं कलयति यो व्यायतास्यतां सततम्।

जयति स सुजयः साक्षात्संसारपराकृतौ सजयः॥ ५॥

कवल यितुं - ग्रास करने के लिए, किल - निश्चय करके, कालं - काल को, कलयति व्यायतास्यतां - मुंह खोले बैठे रहता है, सततं - निरन्तर रूप से, जयति - विजयशील हो, स - वह, सुजयः - सुजय नामक रुद्र, साक्षात् - साक्षात् रूप में, संसार पराकृतौ - संसार से उद्धार करने के लिए, सजयः - शक्तिशाली अथवा जयनशील।

जो काल को ग्रास करने की इच्छा से निरन्तर रूप से मुंह खोले बैठा है और जो संसार से (प्राणियों का) उद्धार करने को तत्पर है, उस साक्षात् रूप में दिखने वाले सुजय नामक रुद्र की जय जयकार हो।

इस रुद्र का मन्त्राक्षर 'ङ' है। जिसके चिन्तन ध्यान व मनन से संसार सागर से प्राणिमात्र का उद्धार होता है।

(क्रमशः)

शैवदर्शन के वातायन से

प्रो० नीलकंठ गुट्ट

अविच्छिन्न—ऐसा कोई पदार्थ या भाव जिसके स्वरूप में किसी भी प्रकार का विच्छेद न पड़ा हो, -अ-विच्छिन्न=खंडनाओं से वर्जित (माहेश्वर-प्रकाशमानता)।

उच्छूनता—बहिरंग अवरोह की प्रक्रिया में, सूक्ष्मातिसूक्ष्म माहेश्वरभाव (स्वात्म माहेश्वरभाव) की क्रमिक स्थूलता के अभिमुख बन जाने की अवस्था।

अनाश्रित—बहिर्मुखीन सृष्टिक्रम में आत्मभाव की एक अवस्था जिसमें वह, जहां एक ओर, पूर्णशिव भी नहीं रहता है और दूसरी ओर परिपूर्ण संसारभाव पर भी अब-स्थित नहीं होता है।

अभिसंहित—कोई ऐसा क्रियाकलाप जिसको अवश्य संपन्न करने के अभिप्राय से चित्त में अनुसंधान का विषय बनाया गया हो। शास्त्रीय शब्दों में इसको मुख्य-प्रयोजन कहा जाता है।

प्रतिबन्धक—किसी पदार्थ के स्वाभाविक धर्म की गति में रुकावट डालने वाले पदार्थ को प्रतिबंधक कहा जाता है।

प्रतिसंधि—आन्तरिक अनुसंधान की तीव्र अवस्था जिसके बल से कोई प्रमाता किसी पहले देखे हुए पदार्थ के पूर्वकालिक अनुभव ज्ञान और वर्तमान कालिक स्मृतिज्ञान का एकीकरण करके, निमिषमात्र में, उसको पहचान लेता है कि यह वही पहले देखा हुआ पदार्थ है।

विच्छिन्न विमर्श—इदंभाव की भूमिका पर, नील-सुख आदि प्रमेयवर्ग की अनेकता एवं अनन्तता के कारण, प्रमाता का विमर्श भी अनेक रूपता का विषय बन जाता है, उसी को विच्छिन्न विमर्श कहते हैं।

पुमर्थ—युग युगों से आवागमन के चक्कर में फंसे हुए पशुओं को जो सब से उत्कृष्ट एवं श्लाघ्य अर्थ प्राप्त करने की महती आवश्यकता होती है उसको 'पुमर्थ' कहते हैं। फलतः पुमर्थ से परिपूर्ण स्वरूप परिचय के रूपवाली सर्वाङ्गीन मुक्ति का अभिप्राय द्योतित होता है।

निरोधक—किसी पदार्थ या भाव का पूरा आवरण बने हुए दूसरे पदार्थ को निरोधक कहते हैं—माया सारे पदार्थों की निरोधिका है।

संतति क्रम—किसी वंश की प्राचीन काल से चली आती हुई वंश-परम्परा को संतति

क्रम कहते हैं। भारतीय परम्परा में इसके दो रूप हैं :— १. पुत्र, पौत्र आदि के क्रम से अथवा २. गुरु-शिष्य क्रम से।

निःश्रेयसाभास—पराद्वैत वादियों की मान्यता यह है कि शैवमत के अनुयायी ही अन्ततः सर्वाङ्गीण एवं सच्ची मुक्ति प्राप्त करते हैं। इसके प्रतिकूल दूसरे अवर दार्शनिक संप्रदाय के अनुयायियों को अधूरी मुक्ति प्राप्त होती है। यही कारण है कि शैव विचारक अपनी मुक्ति को निःश्रेयस और अन्य दर्शनों में वर्णित मुक्ति को 'निःश्रेयसाभास' (अर्थात् अवर प्रकार की मुक्ति का नाम देते हैं।)

उपादान—किसी कार्य की कारण सामग्री में से जिस कारण के बिना वह कार्य सिद्ध ही नहीं हो सकता है उसको उपादान या उपादान कारण कहते हैं।



About Lord Śiva

In Him all distinctions and diversities are absent, in which being and non-being are identified, in which time is merged in Eternity, individuality is merged in universality finitude is merged in infinity. Self knowledge is inherent in His nature and burns the apparent bondage and sorrow of all. He is beginning and the end of His phenomenal universe. The music of creation, preservation and destruction is going on eternally in the outwardly manifested nature of Śiva. The destructive character of Śiva is regarded by self realised soul as the most sublime, the most beautiful of the most merciful and the most loving aspect of the Divine nature. In this state He is there to destroy our egohood and to give in Śivahood.

ब्रह्मवादिनी शारिका देवी जी की स्मृति में पुष्पाञ्जलि:

सुश्री जया कौल

देवी मां का स्मरण आते ही रोमांच हो उठता है। समझ तो नहीं पाती हूँ क्यों? उनकी महानता को मैं क्या जानूँ, परन्तु उनका दर्शन करने पर वह मुझे कैसी दिखती थी, वह श्रद्धांजलि के रूप में व्यक्त करने का साहस करती हूँ।

मुझे वह कैसी दिखती थी, एकदम मीरा बाई, निर्मल, श्वेत वर्ण आवरण, घने काले केश, जिनका एक लेश मात्र दिखता मुख की शोभा बढ़ा रहे थे, मनोहर भोला पर, मंद मुस्कान, सरल स्वभाव और उद्धात-प्रकृति। इन सबके पीछे छिपी हुई अनंत-सागर की गहराई तथा गम्भीरता। इस महान् आत्मा को स्मरण करते ही मन प्रकाशित हो उठता है और मन में आनन्द की लहरें उछलने लगती हैं।

हम भगवान को क्या जानें, उसको तो किसी ने देखा ही नहीं मन में दूढ़ना, कोई एक जन्म का काम तो नहीं। हमारे सामने तो देवी मां ही भगवती थी, हम उनको देख सकते थे, छू सकते थे बातें कर सकते थे।

दुर्भाग्य हमारा, वह इतनी जल्दी हम को छोड़ कर चली गई। अभी हम उस महान आत्मा को समझ ही कहाँ पाए थे। ज्योंही थोड़ा सा आभास मिलने लगा था, हम इस सौभाग्य से वंचित हो गए।

एक साधारण सांसारिक नारी की तरह हमारे जीवन की उलझन सुन लेती थी। एक सुंदर मुस्कान से उनका आध्यात्मिक हल निकालती थी, जो समझ न आते हुए भी आसानी से समझ थे। कितना सुन्दर था उनका यह उपचार, हमें जीवन का तथ्य समझाने के लिए। उनके पास बैठने से कितनी vibrations मिलती थी और मन आनन्दमय हो जाता था। मैं विनती करती हूँ, सदा हमारे साथ रहना और हमारा पथ प्रदर्शन करते रहना। हम बहुत कठिन समय से गुजर रहे हैं, कहीं भटक न जाएँ।

मां जय हो, सदा आपकी जयजयकार हो।

चैतन्यपूरितमिदं निखिलं ही विश्वं

चित्तं चिदात्मनि यदास्तमुपैति शश्वत्।

एवं चित्तेरपृथगेव सुसंस्थितत्वा-

दुक्तो निरस्तकरणं परमः समाधिः॥

सरिता विहार के नव निर्मित आश्रम-भवन में सद्गुरुदेव का अभिनन्दन

सुश्री शीला मुन्शी

चिरप्रतीक्षित ये क्षण आये,
आज हमारे सद्गुरु आये।
हरि है आये हर है आये
संग विरिञ्चि को भी लाये।

जय गुरुदेव जय गुरुदेव
जय गुरुदेव जय गुरुदेव॥

अश्रुजल से पाद पखारे
भाव-भक्ति का अर्घ्य चढ़ाये
मंगल गाये शंख बजाये
श्वास प्रश्वास से छत्र ढुलाये॥

जय गुरुदेव जय गुरुदेव
जय गुरुदेव जय गुरुदेव॥

शिव है बाधम्बर नहीं धारे
वरद-हस्त से शूल निवारे।
रामकृष्ण के रूप में भाये,
नारायण नर में हैं समाये॥

जय गुरुदेव जय गुरुदेव
जय गुरुदेव जय गुरुदेव॥

शुद्ध-बुद्ध चेतन स्वरूप वह
आनन्द पूर्ण अनन्त रूप वह
अघनाशक पोषक शरणागत
अमरेश्वर अमृत बरसाये॥

जय गुरुदेव जय गुरुदेव
जय गुरुदेव जय गुरुदेव॥

योगीश्वर है योगी ध्याये,
दिव्यज्ञान की ज्योति जगाये।
भक्तों के मन में रमाये
कृपा कटाक्ष से पाप हटाये।

जय गुरुदेव जय गुरुदेव
जय गुरुदेव जय गुरुदेव॥

समदर्शी है नाम तिहारा
शाप ताप दुःख भंजन हारा
शक्ति का शिवशंकर प्यारा
ईशबर की आंखों का तारा।

जय गुरुदेव जय गुरुदेव
जय गुरुदेव जय गुरुदेव॥

शारिका तेरी शक्ति स्वरूपा
मूर्तिमती गुरुभक्ति की रूपा
साथ साथ उसको भी लाये
दोनों भवन में हाथ मिलाये।

जय गुरुदेव जय गुरुदेव
जय गुरुदेव जय गुरुदेव॥

हे गुरुदेव! यह नम्र निवेदन
जब तेरा हो उत्सव अर्चन
विलम्ब न करना आना तत्क्षण
तन मन धन करते हैं अर्पण।

जय गुरुदेव जय गुरुदेव
जय गुरुदेव जय गुरुदेव॥



श्री गुरुदेवाय नमः

डा० जवाहर लाल पण्डित

ईश्वरस्वरूप गुरुदेव भक्तों में फिर से आना
हम सब पुकारते हैं स्मरण हमें सिखाना॥

जिसमें तेरी लगन है केवल वही सज्जन है
गुरुभाव में मगन है करता सदा नमन है
भवपोत उसका तू है तू ही सदा ठिकाना
ईश्वरस्वरूप गुरुदेव०

चरणों की तेरी पावन भक्ति सदा जो करते
सन्ताप शाप अघ दुःख जन्मों के उनके हरते
मुक्ति प्रदान करते यह राज है पुराना
ईश्वरस्वरूप गुरुदेव०

हैं दूर आप हमसे दिल मानता नहीं है
आंखों में तुम ही छाकर यादों में तुम बसे हो
आत्मा से आत्मा का यह मेल है पुराना।
ईश्वरस्वरूप गुरुदेव०

दिखते हो आप उन्हें, हैं ज्ञान नेत्र जिन्हें
महिमा तुम्हारी गाते जो नित्य शुद्ध मनसे
स्वस्वरूप का उजाला प्रतिक्षण हमें दिखाना
ईश्वरस्वरूप गुरुदेव०

दर पर तेरे खड़े हैं, है आसरा तिहारा
आंसू भरे नयन है गद् गद् मेरे वचन हैं
चरणों की भक्ति देकर हम सब को तू रिझाना
ईश्वरस्वरूप गुरुदेव०

भावों की पुष्पमाला गुरु पर्व पर चढ़ायी
गुरुपादुका सजायी हरदम जो दिल को भायी
मांगे जवाहर आर्जव गुरुस्मृति को जगाना।
ईश्वरस्वरूप गुरुदेव भक्तों में फिर से आना
हम सब पुकारते हैं स्मरण हमें सिखाना॥

